

कविताओं का संग्रह - कुछ कविताएँ, कुछ एहसास

कलम उठाए बैठा हूँ

— तरुण सहोता —



BlueRoseONE.com
Stories Matter

New Delhi • London

BLUEROSE PUBLISHERS

India | U.K.

Copyright © Tarun Sahota 2026

All rights reserved by author. No part of this publication may be reproduced, stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means, electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the prior permission of the author. Although every precaution has been taken to verify the accuracy of the information contained herein, the publisher assumes no responsibility for any errors or omissions. No liability is assumed for damages that may result from the use of information contained within.

Blue Rose Publishers takes no responsibility for any damages, losses, or liabilities that may arise from the use or misuse of the information, products, or services provided in this publication.



BlueRoseONE.com
Stories Matter
New Delhi • London

For permissions requests or inquiries regarding this publication,
please contact:

BLUEROSE PUBLISHERS

www.BlueRoseONE.com

info@bluerosepublishers.com

+91 8882 898 898

+4407342408967

ISBN: 978-81-69726-81-8

Cover design: Anuj

Typesetting: Tanya Raj Upadhyay

First Edition: October 2026

कलम उठाए बैठा हूँ” केवल कविताओं का एक संग्रह नहीं, बल्कि मेरे जीवन के उन अनुभवों और यथार्थ का प्रतिबिंब है, जिन्हें मैंने स्वयं देखा, महसूस किया और जिया है।

इस पुस्तक में संकलित प्रत्येक कविता किसी न किसी वास्तविक परिस्थिति, मानवीय भाव, सामाजिक अनुभव अथवा जीवन के किसी अनछुए पक्ष से प्रेरित है। ये कविताएँ मेरे मन में विभिन्न अवसरो पर उमड़े भावों, संवेदनाओं, संघर्षों, आशाओं और आत्मचिंतन की सहज अभिव्यक्ति हैं। यदि इन पंक्तियों में आपको अपने जीवन का कोई अंश, कोई स्मृति या कोई भावना दिखाई दे, तो मेरा यह लेखन सार्थक होगा।

मैं अपने पूज्य माता-पिता का हृदय से आभारी हूँ, जिनके संस्कारों और आशीर्वाद ने मुझे जीवन की सही दिशा प्रदान की। मैं अपने सभी गुरुजनों, मार्गदर्शकों, मित्रों तथा उन सभी व्यक्तियों के प्रति भी अपनी कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ, जिन्होंने प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से मुझे प्रेरित किया, मेरा उत्साहवर्धन किया और इस पुस्तक को आकार देने की यात्रा में मेरा साथ दिया।

मैं आशा करता हूँ कि यह विनम्र प्रयास आपके हृदय को स्पर्श करेगा और इन कविताओं में व्यक्त भावनाएँ आपके मन में भी उसी आत्मीयता से स्थान पाएँगी।

—तरुण सहोता

अनुक्रमणिका

विचार.....	3
कुछ यादें	5
वक्त का किनारा.....	7
लोहड़ी.....	9
हालात.....	13
कलम उठाये बैठा हूँ।.....	15
कुछ जिंदगी ऐसी भी।.....	17
कब से नहीं मुस्कराया मैं.....	19
ये मालूम है मुझको	21
अंदर का शोर।.....	23
जब मैं बूढ़ा हो जाऊँगा।.....	25
जाने क्यों हैरान हूँ।.....	27
खामोश रातें.....	29
मेरी पहचान	31
यादें.....	33
सुबह.....	35



विचार

अब कुछ विचार नहीं आते,
दिमाग भी कुछ सुन्न सा है।
ज़मीर भी अब आवाज नहीं देता मेरा,
शायद सीख गया मैं भी ये हेरा फेरा।

कुछ यूँ सिमट गया अब मैं खुद तक,
कि अपने सिवा कुछ दिखाई नहीं देता।
धर्म—ज्ञान की बातों से अब रिश्ता नहीं मेरा,
दूसरो का दुःख—दर्द भी अब सुनाई नहीं देता।

नींद मगर अब आती कम है मुझको,
परिवार भी अब मुझसे थोड़ा रूठ रहा।
शरीर में जाने तकलीफ कितनी है,
पर पैसा—प्रेम ना छूट रहा।

ये वक्त ही जाने कैसा आया,
नाजाने हम सब क्यों भाग रहे ?
रिश्ते—प्रेम—प्यार सब छूटा पीछे,
अब तो रातों को भी जाग रहे।



कुछ यादें

कुछ यादें, भावनाएं और संवेदनाएं निकल आती हैं,
लफ़्ज़ बन कर बाहर।
मगर कुछ अंदर ही दबी रह जाती है,
शायद रास्ता नहीं मिल पाता उन्हें,
बाहर आने का।

और फिर बाहर निकलती है, आँसू बन कर।
ये आँसू शायद लफ़्ज़ों का ही दूसरा रूप है,
जो कभी जुबान से बाहर ना आ सके।
मगर इनको समझ पाना शायद,
मेरे बस की बात नहीं।



वक्त का किनारा

यूं वक्त का किनारा था
कुछ साथ तुम्हारा था।

जाने ये कश्ती जिन्दगी की, कहां से कहां ले आई
ना ध्यान तुम्हारा ना हमारा था।

आज ये किस मोड़ पर आ के थमा है वक्त,
कि सोचता हूँ के जैसा भी था, वो वक्त प्यारा था।



लोहड़ी

माँ मैं भी लोहड़ी मनाऊंगा,
मैं भी मूंगफली, रेवड़ी खाऊंगा।
सुन कर माँ रही भौचक्की—सी,
थोड़ी हक्की—बक्की सी।

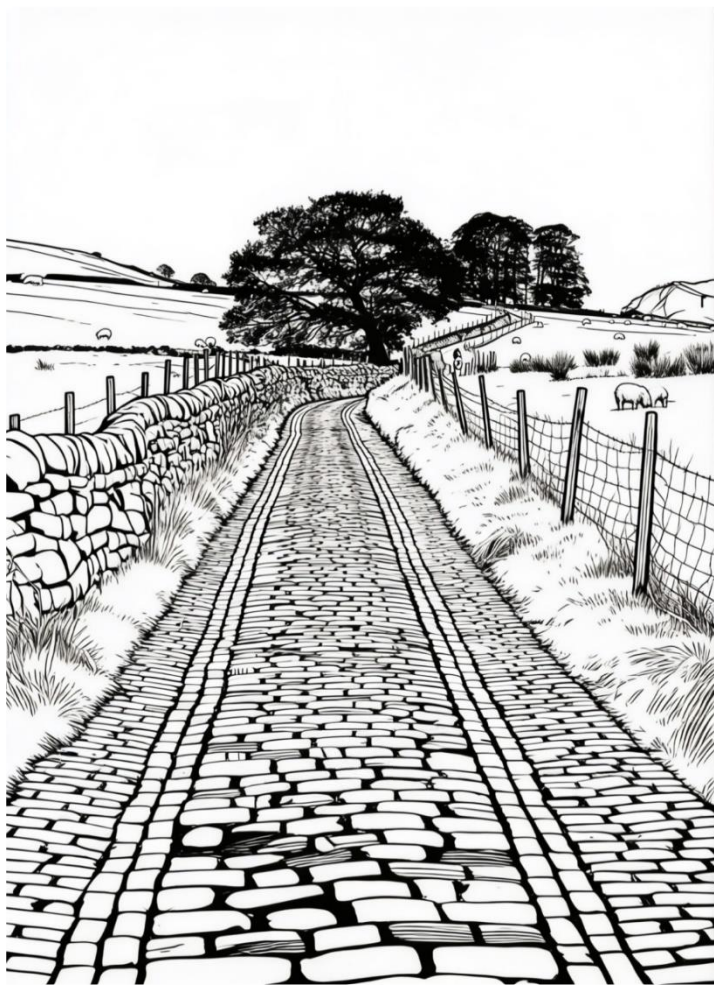
रख कर झाड़ू—पोंछा एक तरफ,
बोली वो अपने लाल को,
बेटा हम भी लोहड़ी मनाएँगे,
मगर इस नहीं,
अगले साल को।

बेटे की आँखों में आँसू थे,
बोला माँ अब तो बहुत साल हुए,
सुनकर यही बात को,
माँ मुझको भी मूंगफली, रेवड़ी दिलवा दे,
इस साल मेरी भी पहली लोहड़ी मनवा दे।

सुनकर माँ लगी फूट—फूट कर रोने,
इतने में मालकिन आ धमकी,
बोली बंद करो ये तमाशा,
जल्दी से तुम काम निपटाओ।

सभी मेहमान बस आने को है,
मेरे पोते की पहली लोहड़ी है।

सारे घर को जगमग कर दो,
मूंगफली—रेवड़ी के अंबार से भर दो।
देख ये सब बेटा सोच रहा था,
माँ क्या त्यौहार है सिर्फ पैसो से
बिन पैसे माँ मैं कैसे लोहड़ी मनाऊ



हालात

हालात कुछ मेरे यूँ बदले क्या थोड़े,
जो अपने थे, वो भी नज़र चुराते हैं।

इस ज़माने की रवायत समझ ना पाया शायद मैं,
के वक्त ही अपने पराये का एहसास कराते हैं।

“रिश्ते” तो जैसे शब्द ही ख़ात्मे पर हैं,
चलो आज हम भी इसे ज़हन से मिटाते हैं।

सोच कर मैं भी चल पड़ा था राह तुम्हारी,
मगर ये रास्ते शायद मंज़िल को तुम्हारी जाते हैं।



कलम उठाये बैठा हूँ।

कलम उठाये बैठा हूँ।
ना जाने क्यों मैं ऐंठा हूँ।
बैठा हूँ कुर्सी पर तनके,
जैसे जड़े हो इसपे चांदी के मनके।

दफ्तर के बाहर लोगों का अंबार लगा है।
और मैं खुश जैसे, मैं राजा और मेरा दरबार लगा है।
तभी एक बूढ़ा फरियादी अंदर आया।
झुक कर उसने मेरे पैरो को हाथ लगाया।
साथ में उसके बच्चा था एक प्यारा
मालिक कह कर उसने मुझे पुकारा।

देख सुन ये सब मन में एक शोर भया।
ना जाने ये सब क्यों मुझे झकझोर गया।
लोगों की सेवा को मैं इस पेशे में आया।
फिर क्यों सेवक होकर मालिक कहलाया ?

पढ़ लिख कर मेहनत के बल मैं यहां तक आया।
लानत है मुझ पर जो इनकी तकलीफें ना समझ पाया।
अब ना होगी ऐसी भूल ये भूल हुई भारी।
देर से समझा मगर आखिर मैं समझा अपनी जिम्मेदारी।
आओ हम सब मिल कर कसम एक नयी खाये।
किसी उदास चेहरे पर रोज हंसी एक नई खिलाये।



कुछ जिंदगी ऐसी भी ।

कुछ जिंदगी ऐसी भी
नंगे पाँव है मगर फिर भी गरम ज़मीन का एहसास नहीं ।
सर पर छत नहीं मगर, बरसती ठण्ड का एहसास नहीं ।
कुछ ऐसे ही एहसास उभरे थे मेरे मन को ।
जब देखा था चन्द दाने इकट्ठे करते उन बच्चों के नंगे तन को ।

शायद अब उन्हें एहसास नहीं था, अपनी तकलीफों का ।

सोचता हुआ मैं भी आगे बढ़ चला था ।
एहसास शायद मरता नहीं, मगर सिमट सा गया है आज ।
बस नहीं मिट रहीं तो हमारी ख्वाहिशें और जरूरतें ।
रोज पंख फैलाये जैसे और ऊंची उड़ान भरने को रहती है
आतुर ।
और इसी उड़ान में ज़मीन से दूरियां कुछ ज्यादा ही हो गयी
हैं, शायद ।



कब से नहीं मुस्कुराया मैं

कब से नहीं मुस्कुराया मैं,
आज ये सोच घबराया मैं।

घर से काम और काम से घर,
बस कुछ लम्हें खुद के लिये ना चुरा पाया मैं।

छोटी छोटी खुशियाँ जो आस पास है,
कब से उनसे नहीं मिल पाया मैं।

रोज खड़ा होता हूँ मैं, जैसे दुनिया को दिखाने के लिए,
बस खुद से नहीं जीत पाया मैं।

इंतजार है वो बचपन लौट आए फिर से,
बस ये बढ़ती उम्र को ही ना रोक पाया मैं।



ये मालूम है मुझको

ये मालूम है,
मुझको सोचता वो भी होगा,
जब थक कर सरहाने पे सर रखता होगा।

दिन तो गुजार लेता होगा किसी तरह वो,
मगर रातों को तो अपने ख्यालों में पाता होगा।

आँखों को बंद कर भूलने की कोशिश भी करता होगा,
इसी कोशिश में फिर करवटें भी बदलता होगा।

कम से कम इतना तो सुकून है मुझे कि,
उसकी रातों में तो मेरी यादों का हिस्सा होगा।



अंदर का शोर ।

तेरे अंदर का शोर भी यू दब जाएगा ।
और कुछ नज़र भी किसी को ना आयेगा ।

जो कुछ भरा हो दिल में गुबार तेरे,
वो निकल जाने दे इस मौसम में बाहर ।

के धुआँ ही धुआँ है हर तरफ यहाँ,
तेरे आँसू भी निकलेंगे अगर,
तो भी कोई ना देख पाएगा ।

तू लाख बया करना चाहे दिल-ए-हालत अपने,
इस शोर में उस तक ना पहुँच पाएगा ।



जब मैं बूढ़ा हो जाऊँगा ।

जब मैं बूढ़ा हो जाऊँगा ।

ठीक से शायद चल फिर ना पाऊँगा ।

शायद मैं थोड़ा ज़िद्दी भी हो जाऊँ ।

बात बात पर गुस्सा भी दिखलाऊँ ।

तू आज है जैसी, तब भी वैसी ही रहना ।

अपने दिल की हर बात को मुझसे कहना ।

मैं तब भी तेरी हर ज़िद्द मानूँगा ।

बिना कहे भी तेरे, तेरी हर परेशानी जानूँगा ।

मैं दिन भर तेरे आने का इन्तजार करूँगा ।

तू काम में इतनी मशरूफ ना हो जाना ।

घर आ कर 'थक गई हूँ' कहकर बिन बात किए ना सो जाना ।

और फिर सुबह मिले बिन ही ना चली जाना ।

छुट्टी के दिन तू दोस्तों संग बाहर जरूर जाना ।

बस एक आध छुट्टी तू मेरे संग भी बिताना ।

घर में बैठ अकेला मैं थक जाऊँगा ।

कभी कोई अपना दिन तू मेरे नाम भी कर जाना ।

जब मैं बूढ़ा हो जाऊँगा ।

तब भी तुम ऐसी ही रहना ।

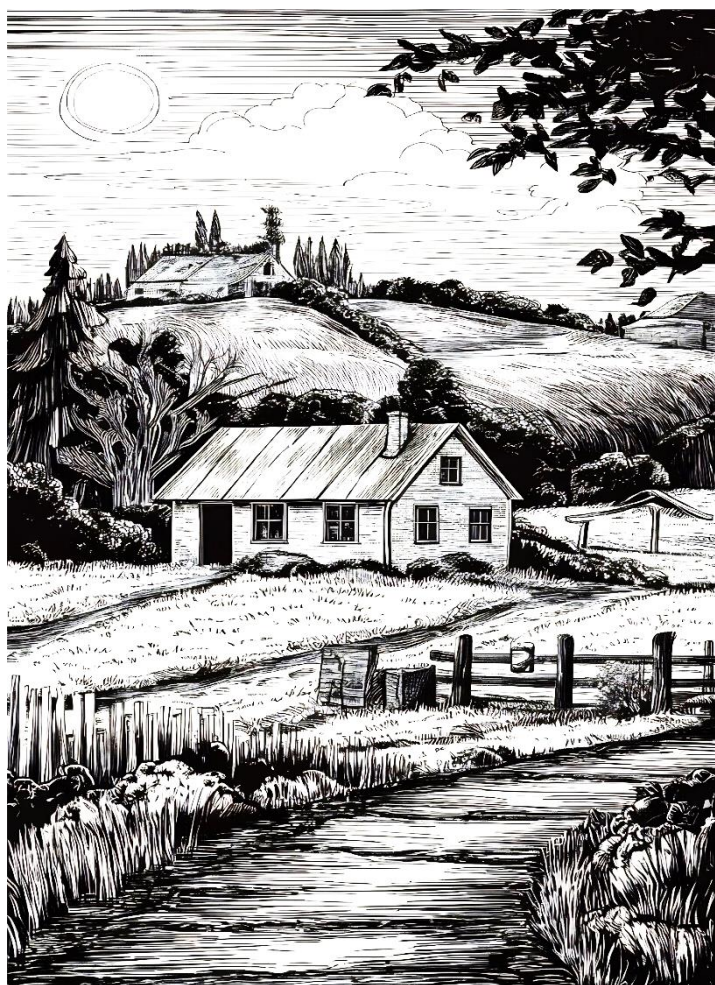


जाने क्यों हैरान हूँ।

जाने क्यों हैरान हूँ
आज फिर मैं खुद से परेशान हूँ।
क्या ये मेरा ही कुसूर है,
या दुनिया का यही दस्तूर है।

बहुत सोचता हूँ खुद को खंगालता हूँ,
ना जाने क्यों खुद को इस दुनिया में ढालता हूँ
शायद मैं भी इस दुनिया का हिस्सा हूँ
किसी के दिन के किस्सो का किस्सा हूँ।

देखता हूँ रोज दुनिया को रोते-हँसते-कोसते हुए,
दो रोटी के लिए भी तड़पते-सोचते हुए।
फिर से सोचता हूँ ये देखकर,
क्या यही दुनिया का दस्तूर है,
क्यों हम इतने मजबूर हैं,
क्या यही जिंदगी का दरकार है
के जीने के लिये कोई दो रोटी को भी लाचार है।



खामोश रातें

कभी इन खामोश रातों में खुद को,
सुनने का दिल चाहता है।
सब कुछ होकर भी पास,
क्यों ये दिल कुछ और चाहता है।

तन्हा गुजर गई उम्र आधी,
इस सफर में,
अब क्यों किसी का साथ पाकर,
ये दिल गुप्तगू चाहता है।

कभी सोचता हूँ क्या कमाया तूने,
इस जिंदगी में,
ये दिल भी अब बस सितम—ए—जालिम,
पर भी वफा चाहता है।
चल उठ अब बहुत रात हो चली,
अब मेरी भी रूह तेरे आगोश में नींद चाहता है।



मेरी पहचान

मैं जिन गलियों से गुजर के आया हूँ,
तुम उन रास्तों पर ना जाना।
के मेरी पहचान का कोई नहीं है,
इस शहर में,
और तेरे चाहने वाले बेशुमार।
कुछ तो निशान छोड़ के जाऊंगा,
मैं भी अपने,
तू बस अपनी रूह पर तलाश करना उनको।



यादें

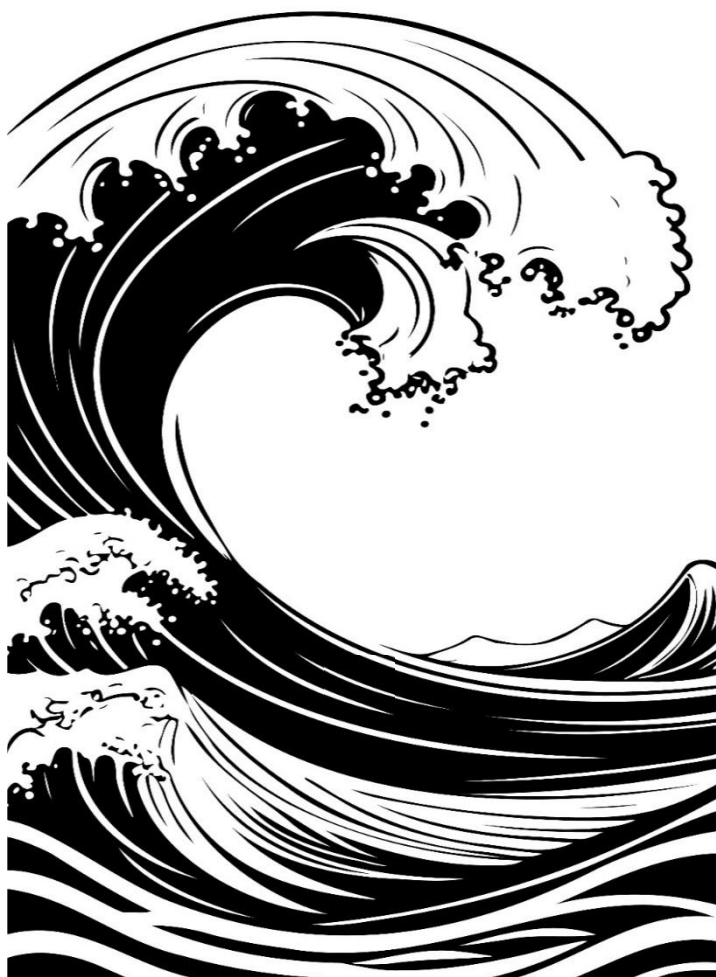
यादें कुछ बीते लम्हों की,
जैसे अब वही हो मेरे पास ।

सफर में कितना आगे बढ़ चला हूं
मगर जैसे हाथ खाली हो मेरे ।

कब सुबह होती है, शाम होती है,
वक्त का जैसे गुलाम हो चला हूं ।

खुशियों को ऐसे बटोरता हूं मैं,
मुश्किले जैसे पहाड़ हो चली हो ।

मोल-भाव सीख गया मैं भी कुछ अब,
जिंदगी जैसे राशन की दुकान हो चली हो ।



सुबह

सुबह हो जैसे वो,
जैसे प्यारा—सा ख्वाब हो।
जैसे सालों की मेहनत का वो,
खजाने सा हिसाब हो।

जैसे लहर हो समंदर की,
जैसे दुआ हो मेरे अंदर की।
मेरे लिए तो जैसे ख्वाब हो मेरा,
प्यारा इतना जैसे शादाब हो मेरा।

